वेद गंगा
स्वामी सनातन श्री

सन्यासी से परिचय

आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व एक अदभुत तपस्वी का लखनऊ नगर में पदार्पण हुआ। विशाल देह, आजानु बाहु, चिर मुस्कान लिये ज्योतिर्मय शुभ आकृति! उस महान व्यक्तित्व ने नौ दिन के प्रवचन में (जो बाद में सनातन दर्शन की पृष्ठभूमि नामक, अमर ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ) जन मानस को ऐसा मोह लिया कि कोई भी उससे बिछुड़ने को तैयार न था।

परन्तु सन्यासी रुकने को तैयार न था। कारण? गृहस्थ और सन्यासी धर्म की अपनी मर्यादा है। गृहस्थों के बीच सन्यासी को अधिक समय नहीं रहना चाहिये। शेर और सन्यासी जंगल में ही शोभा देते है। उसका स्पष्ट मत था जो अटल था।

कुर्सी रोड पर अलीगंज हनुमान मन्दिर से लगभग चार किलोमीटर आगे "श्री सनातन आश्रम" की स्थापना हुई। सन्यासी रुक गया। लखनऊ वासियों

के प्रेम के वशीभूत जैसा हो ।

आश्रम बना। आत्म ज्योतियों से वातावरण मुखरित हो उठा। भक्त मित्रों ने कहा, "स्वामी जी अब चेला बनाइये, अन्यथा आश्रम खर्चा कैसे चलेगा?"

"चेलों के सहारे यह सन्यासी जी लेगा परन्तु जिनके नाम का वस्त्र धारण किया है उनके सहारे कब जियेगा? सनातन स्वामी आगत को ईश्वर ही जानेगा! सेवा करेंगे तथा चरण रज से अधिक कामना नहीं होगी! जैसे नारायण रखेंगे, वैसे ही सबकी सेवा करते हुए तपेंगे! इच्छा जब नारायण से नहीं तो संसार से कैसी कामना?" सन्यासी का उत्तर था!

वर्षों उपरान्त! एक क्षण, एक शब्द भी तो नहीं बदला। पावन सन्यासी ने न तो कभी किसी से इच्छा की, न ही चेला आदि का विचार ही उभरने दिया।

आश्रम के द्वार पर आते ही पुष्प वाटिका में लगा उक्त पट आगन्तुक का मौन, किंतु अन्तर से मुखर स्वागत करता है।

"पुष्प और सन्त
परहित में मुस्कराते हैं। स्वामित्व की संकीर्णता में–
कुण्ठित हो, मर जाते हैं। कृपया इन फूलों को न तोड़ें।

स्वामी सनातन श्री

लखनऊ नगर से उत्तरायण सनातन आश्रम पड़ता है। अलीगंज चुंगी से लगभग डेढ किलोमीटर आगे। चुंगी से आगे बढ़ते ही शहर का शोर भरा वातावरण पीछे छूट जाता है। साथ ही आधुनिकता की उकता देने वाली नकली व्यावहारिकता। दूर–दूर तक फैलै हरे–भरे खेत और बागीचे सड़क के दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े विशाल झुकते पेड़ों का अलौकिक दृश्य, सन्यासी से मिलने की अभिलाषा तीव्रतर होती जाती हैं। फिर आश्रम का सामीप्य और पुष्प, लताओं और पेड़ों के समूहों का मौन स्वागत। शान्त, नीरवता में मूक प्रार्थना–पट! पुष्प और.........

बरामदे में कदम रखते ही कुछ और पट नेत्रों को आकृष्ट करते हैं। आश्रम

की लक्ष्मण रेखाओं का भान कराता एक पट तो दूसरा:

"आप जब प्रणाम करते हैं अथवा चरण रज लेते हैं तो आपकी श्रद्धा आस्था एवं अपने संकोच के कारण यह सन्यासी आपको रोक नहीं पाता है!

अन्यथा, आपके चरणों की धूल ही इस सन्यासी का चन्दन तिलक है।

अच्छा हो, आप मन ही मन प्रणाम करें तथा ऐसा कुछ न करें जो संकोच का कारण हों।"

गुरुता की गरुता का भार ढोये कौन!

जन–जन की चरण रज को–
हम भाल तिलक जानते हैं।

स्वामी सनातन श्री

आगन्तुक स्तब्ध पट को देखता रह जाता है, एक सन्यासी इतना अकिंचन! वह आगन्तुक का प्रणाम नहीं, चरण रज चाहता हैं तभी दूसरा पट्ट––

"मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारे, मानव प्रेम के सबल सहारे।

सावधान! धर्मद्रोही हत्यारे–ना न दें कसाई बाड़े।
हर एक राह, नेक राह।।

स्वामी सनातन श्री

प्राणीमात्र में ईश्वर को देखने की बात तो सारे सम्प्रदाय और गुरू कर्णधार करते आये हैं परन्तु क्या किसी ने........।

सद्गन्थों में, अतीत कथाओं में, हमने पढ़ा एवं सुना था कि आश्रमों में पशु–पक्षी भी मनुष्यों की तरह बोलते हैं। श्री सनातन आश्रम में आज भी आपको ऐसा सुखद आश्चर्य होता है जहाँ कुत्ते बिल्लियां और जंगली पशु–पक्षी भी वाणी से वरद् होकर ईश्वर का नाम जप एवं ध्यान करें। जहाँ कुआरी बछियां भी स्तन से दूध गिरावें। जो अविश्वसनीय है तथा कथाओं में ही मिलता है उसका प्रत्यक्ष दर्शन कराते आश्रम के पशु, भक्त को स्तब्ध कर देते हैं। अतीत की कथाओं पर अनायास विश्वास हो उठता है। अकिंचन, किसी से कोई इच्छा नहीं, फिर भी सारे भारत में मुफ्त बँटती किताबें नाना प्रादेशिक भाषाओं

में, सब कुछ एक सपने सा लगता है फिर भी इतना सत्य और प्रत्यक्ष की प्रमाण का प्रश्न ही नहीं।

अतीत की मर्यादाओं का निर्वाह भी कितना स्पष्ट एवं पाखण्ड से रहित। आश्रम में प्रवेश पाते ही आगन्तुक की निगाहें सूचना पट पर टिक जाती है।" अनन्त काल से सूर्य और पृथ्वी असीम प्यार की डोर में बँधे एक दूसरे के लिए तपते, और फलते फूलते हैं, परन्तु एक दूसरे से मिलते नहीं हैं। मिलन दोनों का सर्वनाश ही तो है।

सन्यासी और गृहस्थ का प्रेम सूर्य और पृथ्वी की भांति ही है सन्यासी तपे जिससे गृहस्थ, सदगृहस्थ बन वासना और अज्ञान जलाकर सुखपूर्वक फलें फूलें। पृथ्वी और सूर्य की भांति अपनी सीमाओं और लक्ष्मण रेखाओं का सम्मान करते हुए।

आप हमारी और अपनी मर्यादा एवं दूरी का सम्मान करते हुए हम सन्यासियों को सेवा का अवसर दें। संकोच का कारण न बनें।

धन्य है वे लोग जो इस आश्रम में आते हैं। धन्य है यह आश्रम जो सनातन मूल्यों को अनायास और सहज ढ़ग से जनमानस में स्थापित करता चल रहा है। धन्य है स्वामी सनातन श्री, उनका स्नेह और आशीर्वाद जो सर्व सुलभ है, साक्षात आश्रम में, उसके कण–कण में और उनकी वाणी में जो कैसेट्स और पुस्तकों में शाश्वत रूप से अक्षुण्ण रहेगा, सदा ही ।

श्रीरामचन्द्र गुप्त
प्रवक्ता, भौतिक विज्ञान,
लखनऊ क्रिश्चियन कालेज,लखनऊ

वेद-गंगा

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रन्ताधातमम्।।1.1.1.1।।

(अग्निम्) अग्नियो के अधपति! प्रलयंकर रूद, (पुरोहितं) ब्रहमा, यज्ञस्य) यज्ञ के (देवमृत्विजम्) देवलोक को जीतने वाले विष्णु (होतारं) न्योछावर करने वाले (रत्नधातमम्) रत्नमयी उपलब्धियाँ स्तुति करे रुद्र की, ब्रम्हा की, विष्णु की! यज्ञ के होतार है वो कर रहे न्योछावर जीवन की स्वर्णमयी उपलब्धियाँ! अद्वैत करे!

अग्निः पूर्वोभिर्ऋषिभिरीऽयो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षाति।।1.1.1.2।।

(अग्निः) आत्मा (पूर्वेभिः) पूर्वकाल में भी (ऋषिभिः) साधको.ने (ईड्यो) अद्वैत किया! पूजा (नूतनैरूत) नित्य नयी होती रश्मियों में (स देवाँ एहवक्षति) वह देवत्य आते हैं

अग्निना रयिमश्रवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरत्तामभ्।।1.1.1.3।।

(अग्निनः) अग्नियो में (रयिम्) शीघ्रता से आकर (अश्नवत्) व्याप्त हुये! सभागये (पौषमेव) पोषित हुये इस प्रकार (दिवे दिवे) क्षण क्षण निरन्तर (यशसं) यशस्वी (वीरवत्तमम्) वीरोचित सम्मानित ।

अग्ने य यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।।1.1.1.4।।

(अग्ने) आत्मा (यं) जिस (यज्ञम) यज्ञ (अध्वरं) अमर (विश्वत) सचराचर (परिभूरसि) व्याप्त (स) जीव (इत) ऐसे (देवेषु) देवत्य में (गच्छति) जाता है।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्र श्रवस्तमः।
देवों देवेभिरागमत्।। 1.1.1.5।।

(अग्निर्होता) परमेश्वर (कविक्रतु) आत्मा यज्ञो द्वारा (सन्य) प्रकृति (च) तथा (श्रवस्तम) जीवत्व करने वाला (देवो) देवज्ञानी (देवेभिः) देवत्य मे (आगमत) आ जाता है।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।।1.1.1.6।।

(यत्) जिस (अंग) प्रकृति के भाग अर्थात टुकड़े (दाशुषे) जलाना यज्ञ करना भस्म करना (त्वमं) तुम (अग्ने) आत्मा अग्नि (भद्र) कल्याण, शुभ, मंगल

(करिष्यसि) करना (तवेत) आपकी (तत) उस यथा (सत्यम्) प्रकृति (अंगिरा) अंग हो जाना, उत्पन होना जुड़ जाना

.उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषा वस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।।1.1.1.7।।

(उप) त्यापत हो गयी, (त्वाग्ने) तुमसे हे अग्नि (दिवेदिवे) निरन्तर (दोषावस्ता) कलुष के बिस्तर (धिया) बुद्धिया (वयम्) हमारी (नमोमरन्त एमसि) नमः भरतार ऐसे व्याप्त हो गये तुमसे कलुष के बिस्तरो पर सो रही बुद्धियों के स्वामी हम लोग! पवित्र अगर हुये! हे भरतार हमारे नमस्कार।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमान स्वे दमे।।1.1.1.8।।

राजन्तम् (ज्योति के उदगम (अध्वराणाम्) यज्ञो के (गोपाम्) ग्रहों एवं नक्षत्रो (ऋतस्य) नित्य आत्मा (दिदिवम्) टिमटिमाना (वर्धमान) वृद्धि करने वाले विष्णु (स्वे) आत्मा (दमे) ज्योर्तिमय होना दमकना।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।

सचस्वा नः स्वस्तये।।1.1.1.9।।

(स) जैसे जीव (न) हमको (पितेव) पिता की भाँति (सुनवे) उत्पन्न करने वाले (सूपायनो) शोभाओसेयुक्त (भव) होना, (सचस्वा) आत्मा से जुड़ना (नः) हमको (स्वस्तये) आत्मा स्थिर होना (स्व) आत्मा (स्थ) स्थित।

वायवायाहि दर्शतेमेसोमा अरंकृताः।

तेषा पाहि श्रुधी हवम्।।1.2.1।।

(वायवायाहि) वायु, प्राण वायु (आयहि) आवाहन (दर्ष) उत्पत्ति का यज्ञ (तेम) सीचना, जीवन्त करना (सोमा) ज्याति, जीवन अरंकृता) अलकृत करना परिपूर्ण करना (तेषाम्) उनको (याहि) रक्षा करना (श्रु) उत्पत्ति (धी) धारण करना (हवम्) यज्ञ।

वायं उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः।

सुत सोमा अहर्विदः।।1.2.2।।

(वाय) वायु! बुनकऱ (उक्थेभिः) स्तोत्र (जरन्ते) जीर्ण होना (त्वामच्छा) तुम निर्मल करते हो (जरितारः) जरन्व तारण (सुतसोमा) ज्योति से सीचना (अहर्विदः) कुमारावस्था।

हे वायु! आप स्तोत्र को जीर्णता से निर्मल करते। निचोड़ के अमृत पुनः प्रज्जवलित करते! आप है अमर उपऋत्विज!

वायो तव प्रपृश्चती धेनाजिगाति दाशेषु।
उरुची सोमपीतये।।1.2.3।।

(वायो) प्राणवायु (तव) आप (प्रपृंचती) असीम अनन्त (धेना) सागर (जिगाति) उपाचार्य (दाशुषे) यज्ञो में (उरूची) व्यापकता से (सोमपतिये) जीवन ज्योति पान कराने वाले। असीम अनन्त सचराचर रूपी सागर के है आप उपऋत्विज! व्यापकता से सोचते यज्ञों को जीवन ज्योति रूपी अमृत से!

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्तिहि।।1.2.4।।

(इन्द्र) महान (वायू) वायु (इमे) इस प्रकार (सुता) निच़ोड़ना, उत्पन्न करना (उप) व्याप्त (प्रयोभि) प्रयत, जितेन्द्रिय (आगमत) आकार (इन्द्रवो) इन्द्रका (वाम) वाया (उशन्ति) शुक्राचार्य (हि) दूत

वायविन्द्रश्च चेतथः सुताना वाजिनीवसू।

तावा यात मुप द्रवत।।1.2.5।।

(वायविन्द्रश्च) वायु तथा महान आत्मा द्धारा (चेतथः) अर्थात जागृति अर्थात चैतन्य हुई (सुताना) उत्पन्न करने वाली (वाजिनीवसू) यज्ञ की अग्नि (तावत्) शीघ्रता से (आयातम्) आओ (उप) व्याप्त हो (द्रवत्) निचुड़ जाओ अस्तिव को खो दो, समाप्त कर दो।

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम।

मक्ष्विन्या धिया नरा।। 1.2.6।।

(वायविन्द्रश्च) वायु तथा महान आत्मा द्वारा (सुन्वत) उत्पन्न किये हुये

(आयातम्) आकर (उप) व्याप्त (निष्कुतम्) विलय, मिल जाना। (मखः) यज्ञ (इत) इस प्रकार (स्थः) स्थापित (धिया) धारण कराने वाली (नरा) ब्रग्ह ज्वाला, नारायणी।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताची साधन्ता।।1.2.7।।

(नित्र वरुण च) मित्र वरुण आदि रुद्र (हुवे) हवन, यज्ञ। (पूत) पवित्र (दक्ष) अग्नि (च) तथा (रिशादसम) हत्या करना मिटा देना। (धियं) धारण करना (घृताची) ब्रम्हविहत (साधन्ता) अकिंचन भिक्षुक।

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृत स्पृशा।
ऋतु बृहन्तमाशाथे।। 1.2.8

(ऋतैन) आत्मा के लिये (मित्रा वरुणा) गहा प्रलय ऋतावृधा – आत्मा तप की वृद्धि (श्ररत स्पर्शा) – आत्म अद्वैत (आत्मा में व्याप्त) (क्रतुग्) कर्त्ता।

(बृहन्तग) – अनन्त। (आशाधे) – व्याप्त होना। ऋतुभ – अमर

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्ष। दधाते अपसम्।।1.2.9।।

(कवी) – आत्मा (नः) – हमारे। (उरूक्षया) – अमर, ह्रदय में वास करने वाले। (मित्रा वरुणा) – प्रलय अग्नियाँ (दक्षः) यज्ञ की अग्नि। (तु) – तथा (विजाताः) वर्ण संकट करना (दधाते) – धारण कराते। (अपसम) – प्रलय और उत्त्पत्ति।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम्।।1.3.1

(अश्विना देव की ब्रम्ह ज्वाला (यज्वरीरिषो) यज्ञों के द्वारा उत्त्पत्ति, पाषण एवं संहार करने वाली (द्रवत्पाणी) लहराती हाथों अथवा लपलपाती गिव्हाओं वाली (शुभस्पती) शुभत्व को करने वाली (पुरुभुजा) असंख्य मुखों. असंख्य

भुजाओं वाली। (चनस्यतम्) भक्षण करने (अश्विना) देवली ब्रम्ह ज्वाला (यज्वरीरिषो) यज्ञो को करने वाली (द्रवत्पाणी) लहराती हाथों अथवा लपलपाती सिरहाओ वाली (शुभस्पती) शुभत्व को करने वाली (पुरुभुजा) असंख्य मुखों, असंख्य – भुजाओ वाली (चनस्यतम्) भक्षण करने वाली।

अश्विना पुरुदसंसा नरा शवीरया धिया।

धिष्णाया वनतं गिरः।। 1.3.2

(अश्विना) आत्माग्नि देवकी। (पुरुदेससा) असंख्य शूल धारिणी, कौशल्या। (नरा) – ब्रम्हाणी। (शवीरया) – जड़ चेतन सचराचर। (धिया) – धारण करने वाली। (धिष्णया) – यज्ञ वेदी में प्रतिष्ठित। (वनत) – देव मानव दानव जिससे विनती करें (गिरः) – स्तुल्य, वन्दनीय सरस्वती।

दस्त्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।

आयातं रुदंवर्त्तनी।। 1.3.3

(दस्त्रा) – सहस्त्र षूल पाणि (युवाकव) – उत्कर्ष यौवन (नासत्या) – असत्य से परे, नित्य (वृक्त बर्हिषः) – पावन यज्ञों द्वारा उत्पत्ति (आयातम्) आवाहन (रुद्रवर्त्तनी) – प्रलय पथ गामिनी, महा शिवा, आदि शक्ति।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः।। 1.3.4

इन्द्र (ब्रम्ह ज्वाला) आयाहि) आवाहन किया। चित्र भानो (सूर्य की) सुता (पुत्री पृथ्वी ने) इमे (इस प्रकार) त्वा (तुमने) यवः (अन्न में उद्धार किया) अण्वी चिस्तना (शरीर के अणु–अणु को। पूतासः (पवित्र किया)

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।

उप ब्रम्हाणि वाघतः।। 1.3.5

इन्द्रायाहि – आवाहन ब्रम्हज्वाला। धियोषितो – धारण करने की इच्छा। विप्रजूत – बुद्धिमान दम्पत्ति सुतावतः – पुत्र रूप में। उप – व्याप्त होना।

ब्रम्हाणी – ब्रम्ह ज्वाला, प्रलययाग्नि। वाद्यत – प्रलय, विसर्ज़न, महामृत्यु।

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रम्हाणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः।। 1.3.6

इन्द्रा – ब्रम्हज्वाला। आयाहि – आवाहन हुआ। तूतुजान – प्रलय, विसर्जन, ज्योति उपरान्त। उप – व्याप्त हुआ। ब्रम्हाणि – ब्रम्हज्वाला में। हरिबः – उत्पत्ति सृजन हेतु। सुते–पुत्र रूप में सृजित होकर। दधिष्व – गर्भ रूपी क्षीर सागर। न – हम चन – अन्नादिक।

ओमासत्रार्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम्।। 1.3.7

(ओमास) अमर, यज्ञ, जीवन। (चर्षणी – घर्षण, उत्पत्ति (धृतो) धारण करने हेतु (विश्वे) अमर, अविनाशी। (देवास) देवता। (आ गता) आये, पधारे। (दा) प्रदान करना, देना (श्वासों) सांसे, धड़कने (दाशुषः) यज्ञ के द्वारा ब्रम्हाग्नियों

द्वारा। (सुतम) पुत्र, उत्पन्न, निचोड़े हुये।

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमांगत तूर्णयः।
उस्त्रा इव स्वसराणि।। 1.3.8

विष्वे देवास (अमर देवता, आत्मा) अप्तुरः – व्याप्त होना, ज्योतिष्टोम यज्ञ सातवां मन्त्र) सुतम – (उत्पन्न हुये पुत्रा) आगन्त – (आना, प्रकाशित, आवाहन, आतिथ्य) तूर्षाय – (शीघ्र, प्रज्जवलित, चमकना) उस्त्रा – (सूर्य, यज्ञ, प्रकाश, ब्रम्हाग्नि) इवः (भांति) स्वसराणि – (कलख, कोलाहल, वाणी)

विश्वे देवासो अस्त्रिाध एहिमायासो अद्रुहः।
मेधां जुषन्त वहनयः।। 1.3.9

(विश्वे देवासो) अमर देवता आत्मा एवं प्राणवायु (आचार्य, उपाचार्य) (अंस्रिध) रक्त, माँस, मज्जा, हड्डी। (अद्रुहः) पुष्ट करना, वज्र देह (एहिमायासो) – भौतिक मायाओं, गुरुत्वाकर्षण, (मेधां) मेधा बुद्धि। (जुषन्त) आत्मासि, अद्वैत

करना, सयुक्त होना, ब्रम्ह ज्ञान को पाना अर्थात् अमर होना (वह्यः) अग्नि, ब्रम्हाज्वाला, दुर्गा।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः।। 1.3.10

(पावका) – अग्नि, ब्रम्हज्वाला। (नः) – हमारी (सरस्वती) – सरस्वती। (बाजेभिः) यज्ञों द्वारा (वाजिनीवती) बाजीकरण करने वाली, पुष्ठ करने वाली। (यज्ञ वष्ठू) परावर्तन का यज्ञ (धिया वसु) – अग्नियों को धारण करने वाला।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती।। 1.3.11

(चोदयित्री) धारण, सृजन, संहार को प्रज्वलित, प्रेरित, उकसाने वाली (सुनृताना) मंगल, उत्पत्ति के यज्ञों में (चेतन्ती) चैतन्य करना, जागृत करना (सुमतीनाम्) सुमति, विवेक, मंगल ज्ञान। (यज्ञ) यज्ञ, उत्पत्ति के ज्ञान (दधे)

धारण कराओ (सरस्वती) विद्या और सुमति दायनी, ब्रम्ह विद्या दायनी, ब्रम्ह ज्वाला, सरस्वती।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना।
धियो विश्वावि राजति।। 1.3.12

(महो अर्णः) हे अन्तरिक्ष के यज्ञ दीप्ति (प्रचेतयति केतुना) ग्रहो और नक्षत्रों को अपने गर्भ से प्रकट कर गगन मंडल में प्रतिष्ठित कराने वाली तथा ज्योर्तिमय बनाने वाली (धियो। हमको भी धारण कराओ (विश्वा) अजर अमर कभी न मिटने वाली (विराजति) विशिष्ट ज्योतियाँ, ज्योर्तिमय अनन्त स्वरूप।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुधामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि।।1.4.1.

(सुरूप) सगुण, साकार (कृन्नु) करने वाले कलाकार (मूतये) बन्धने वाले (सु) दिव्य (दुधा) दुधारी गाये (इव) भाँति (गोदुहे) ग्वाले (जुहूमसि) स्त्रुवा·लिए अर्ध चन्द्राकार भाल तिलकधारी छवि (द्यविद्यवि) क्षण–क्षण घट, घट।

उप नः सवनागहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद्रेवतो नद।।1.4.2

(उप) व्याप्त, सम्मुख, उपस्थित (नः) हम (सवन) स्नान (जन्म, मृत्यु, विवाह अथवा साम्रगी को यज्ञ पूर्व पवित्र करने हेतु (आगहि) आना, प्रस्तुत होना (सोम) ज्योति (अस्य) ऐसे (सोमअपः) सोमपा, ज्योति जल (पिब) पीना (गोदा) गो, ग्रह, नक्षत्र, प्रकाश, इन्द्रिया (दा) दायनी (श्वेतः) परिक्रमा, फेरे (इद) ऐसी (मदः) नरा, उन्माद।

अथा ते अन्तमानां विद्यामं सुमतीनाम्।
मा नो अतिख्य आ गहि।। 1.4.3

(अथा) आरम्भ (ते) ऐसे (अन्तमानाम) अन्न हल्दी का उबटन, आदि अन्त से विहीन, अनन्त। (मा) मत, नहीं (मा) लक्ष्मी (नो) हम (अतिख्य) अति ख्य अति – प्रसिद्धि (आगाहि) आगमन, आ गये (विद्याम) विद्या ज्ञान (सुमतीनाम) सुमती से युक्त।

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्वितम्।

यस्ते सखिभ्य आ वरम्।।1.1.4

(परेहि) दूर हटते हुये (वि) रहित, न (ग्रम) विश (स्थः) स्थित (श्रतम्) आत्मा (इन्द्रम्) महान, अग्नि (पुच्छा) अतीत पीछे छूटा हुआ (वि) रहित, न (पष्यतम्) देखना, देखते हुये (यस्ते) जिस कारण (सखिभ्य) हे सखा, सखे (आ) आये हैं (वरम्) वरण, पणिग्रहण (वरेण्यम्) गायत्री मंत्र में।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।

दधाना इन्द्र इढ़्ढनः।। 1.4.5

(उत) संशय (नो) (नः), हम। (ब्रुवन्तु) बनावट, नाटक, ढोंग, दिखाना (निदो) निन्दा, अज्ञान, आसक्त सर्कीण मानसिकता (निरयन्त) दूर है, निपट गये, अलग हो गये। (च) तथा (चिदारत) एकीभाव से आत्म साथ होना (दधाना) धारण करो, संयुक्त करो, योग करो (इन्द्र) ब्रम्ह अग्नियों में, आत्मा रूपी लपटों में (इद) भान्ति, तरह, प्रकार (दुव) समिधा, यज्ञ के लिए समिधा, सांत्लय।

उत नः सुभगाँ. अरिर्वोचेयर्दस्म कष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि।। 1.4.6

अरि – शत्रु वोचेषु – चर्चित। दस्य – यस्य (अरिर्वोचयदस्म) विषय, वासनाओं रूपी शत्रुओं को भस्म करना (सुभगो) अमर ज्योतियों रूपी यज्ञ कृष्ण (कृष्टयः) आकृष्ट हो गई है आत्मा के आकर्षण से सम्मोहित हो गई है। (नः) हम (उत) संशय, अज्ञान (स्यामेदिन्द्रस्यं शर्मणि) इस लिए हम स्या – ऐसे। मेद – बुद्धि। इन्द्रस्य – आत्मा ज्वालों के लिये यज्ञ को ज्वालाओं का स्पर्श सुख तथा यज्ञमय होने के परम आनन्द की अधिकारी है।शर्गणि – आनन्द, सुख, वैभव।

एमाशमाशेव भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत्सखाम्।। 1.4.7।।

एम (अम) कच्चा (आशम) आशव, रस निचोड़ा अथवा पकाया हुआ शर्बत (भर) व्याप्त होना, भरना (यज्ञश्रियम्) यज्ञ के ऐश्वर्य (नृ) मनुश्यादि तथा ब्रह्म

ज्वालायें. (मादनम्) आनन्दित करना (पतयन्) पतित, गिरा हुआ (मन्दयत्) राजस ज्योर्तिमय (सखम) सखा मित्रा। अम्, आषुम, आशवे, भर, यज्ञश्रियं नृ मादनम्। पतयन मन्दयत सखम्।। 1.4.7।।

अस्य पीत्वा शतक्रतो धनो वृत्राणामभवः।
प्रावोवाजेषु वाजिनम्।। 1.4.8

अस्य – उसको। पीत्वा – पीकर। शतक्रतो – प्रलंयकर रुद्र सा, ज्योतिमर्य वज्र सा! धनो – काले धनेरे, अज्ञान का उमड़ता अन्धकार। वृत्राणाम् – बादलों को आभव – नष्ट करना, मिटाना प्रावो – व्यापकता से। वाजेषु – यज्ञों में वाजिनम – यज्ञ होना, व्याप्त होना, नष्ट होना।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये।।1.4.9।।

तं – तब व्याप्त होना। त्वा – तुम्हारे द्वारा। वाजेषु – यज्ञ में। वाजिनम् – यज्ञ होकर, व्याप्त होकर। वाजयाम! – विष्णु सा सुन्दर, यज्ञ शिशु।

शतक्रतो – प्रलंयकर रुद्र सा बलवान एवं ज्योतिर्मय। धनानाम् – ऐष्वर्य ६ ानधान्य। इन्द्र – ब्रम्हज्वाला। सातये – अलंकृत, वरद, सुखी।

यो रायोउवनिर्महान्त् सुपार सुन्वत सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत।। 1.4.10।।

यो – जो। रायो – शीघ्रता से। अवनि – धरती पर (आत्मा रुदी) महान्तक्षु – महा अन्त्येष्टि। पारः – उद्धार। सुन्वतः – उत्पन्न हुआ। सखा – मित्रा। तस्मै – उसको। इन्द्राय ब्रम्हाग्नियों द्वारा। गायत – गाना, स्तुति, वन्दना।

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्र गायत।
सखायः स्तोमवाहसः।।1.5.1।।

आ – आकर। त्वेता – शीघ्रता पूर्वक। निषीदत – बैठ गया। इन्द्रम् – ब्रम्ह ज्वालाओं अभि – सम्मुख। प्रः – प्रमुखता से अमर। गायत – स्तुति, वन्दना, आहुति। सखाय – सचराचर के मित्रा। स्तोम् – यज्ञ। वाहस। – धारण करने वाला, परमेश्वर।

पुरुतमं पुरुणामीशानं वार्याणाम्।
इन्द्रं सोमे सुते।।1.5.2।।

परुतमा (पुरः उतमम) उत्तम लोक (शरीर) पुरुणाम – लोको में भी। ईशान – महासूर्य लोक, परमेश्वर। वार्याणाम् – वरण हेतु। इन्द्र – ब्रम्ह ज्वालाओं। सोमे – अमर ज्योतियों से, अमृत से। सचा – सींचने, सयुंक्त करने। सुते – उत्पन्न करने।

स घानो योग आ भुवत स रोये स पुरंध्याम्।
गमद्धाजेभिरा स नः।।1.5.3।।

सघानो – सघन बादलों का मिलन। स जीव, ज्योति – आत्मा। धा – प्रहार, घर्षण, प्रलय। नो (नः) – हम। योग – मिलन। आभुवत्स – अन्तरिक्ष, गगन, क्षीरसागर। राये – शीघ्रता पूर्वक। पुरन्ध्याम – अर्न्तनिहित, समाधिस्थ, तन के मैल को धोना। गमढ़ – जाना। वाजेभिः – यज्ञों द्वारा। स – जीव, प्रकृति नः – हम लोग।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्र्रावः।
तस्म इन्द्राय गायत।।1.5.4।।

यस्य – जिससे, जिस, जिस के द्वारा। संस्थे – सयुंक्त होकर स्थित होने से। न – नहीं। वृणवते – वरण कर सकती, जीत सकती। हरी – विष, पराजय, मृत्यु। समत्सु - समस्त, सारे। शत्रावः – शत्रु विरोधी। तस्मा – उनको। इन्द्राय – ब्रम्ह ज्वालायें। गायत – वरद करती हैं। ग्रहण तथा सम्मानित करती है।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ।।1.5.5।।

सुत –पुत्र, उत्त्पत्ति। पाव्ने – पवित्र। सुता – माता उत्त्पन्न करने वाली, ब्रम्हाग्नि। इमे – इस प्रकार। शुचयो – पवित्र किया। यन्ति – जो। वीतये – व्याप्त हो गये, प्रलय को प्राप्त हुये। सोमासो – अगर ज्योतिमर्य अन्तरिक्ष। दध्याशिरः – क्षीरसागर से सूर्य की भान्ती अथवा ज्योतिर्मय अग्नि बाण की भान्ति।

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठचाय सुक्रतो।। 1.5.6।।

त्वं – तुमने। सुतस्य – निचोड़े हुये, उत्पन्न किये हुये। पीतये – पीकर, ग्रहण करके सद्यो – नित्य, अमर। वृद्धो – उत्थान। अजायथाः – उत्पन्न करना। इन्द्र – महान ब्रम्ह ज्वाला। ज्येष्ठयाय – श्रेष्ठ, उत्तम, अद्भूत। सुकूता – मंगल कृत्य करना।

आ त्वा विशन्तवाशवः सोमास इन्द्र निर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ।। 1.5.7।।

आ – आकर। त्वा – तुमने। विशन्त् – सन्तप्त अमंगल। शव – मृत, गड़। सोमास – ब्रम्ह ज्योति, आत्म तेज। इन्द्र – महान, ब्रम्हाग्नि। गिर्वणः – जीवन्त करना, अभिमन्त्रित करना। शन्ते – मंगल शान्ति। सन्तु – व्याप्त होना। प्रचेत से – चैतन्य, विशिष्ट रूप से प्रकाशित, अमर होना।

त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्या शतक्रतो।
त्वां वर्धान्तुनो गिरः ।।1.5.8।।

(त्वां) – तुम हो, (स्तोमा) – यज्ञ, (अवी) उत्पत्ति, जब प्रकृति संतान संतति धारण के योग्य (राजखला होती है)

(वृधन) – वृद्धि करने वाले (त्वा) तुम हो (उक्था) स्त्रोत वेदो की ऋचायें (शतकृतो) शतकृतः प्रलय की अग्नि, ब्रम्ह ज्वाला (त्वाँ तुम हो (वर्धन्तु) ज्ञान को देने वाले, ब्रम्हा (नो) ना हमारी (गिरः) वाणी देवी सरस्वती।

अक्षितोति। सनेदियं वः जमिन्द्रः सहस्त्राणम्।
यस्मिन्विष्वानि पौस्या।। 1.5.9।।

(आक्षितोति) सीपी में बन्द मोती अथवा बंद पलको में आँख की पुतली (सने) स्नेहिल, स्नेहसिक्त (इदम्) भाँति (वाजम्) यज्ञ करना (इन्द्रः) ब्रम्ह ज्वाला (सहडित्रणम्) सहस्त्र, असंख्य (यस्मिन्) जिस कारण (विश्वानि) क्षण भंगुर संसार, विश्व सचराचर (पौस्या) पुनः पुनः जीवन्त होना, प्रकट होना।

मा नो मती अभिद्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः।
ईशानो यवया वधम् ।। 1.5.10।।

(मा नहीं, मत (नो) हम, हमारी, हमारे द्वारा (मर्ता) मृत्यु (अभिद्रुहन) अभिद्रोह, षड़यंत्र (तनूनाम्) शरीर में, शरीरों के लिए (इन्द्र) ब्रम्ह ज्वाला (गिर्वणः) देव गुरु, निसृत करना, संचारित करना, शिव, आत्मा जीवन देने वाले। (ईशानो) शिव, आत्मा, परमेष्वर, जीवन, ज्योतिदाता (यक्या) बीज सहित (वद्यम्) हत्या, मारना।

युज्जन्ति ब्रन्धामरूषं चरन्तं परि तस्युपः।
रोचन्ते रोचना दिवि।। 1.6.1।।

(युन्जन्ति) (युज, जुड़ना) अन्तिम रूप से जुड़े (ब्रधनम) ब्रम्ह ज्वाला (अरूप) ज्योंतिमय (चरन्तम्) गीत देने वाला, जीवन्त करने वाला (परितस्थुषः) (परि) व्यापकता से हर और से (स्थुषः) स्थित करने वाला व्यापकता से स्थिर रखने वाला 'नित्य' (रोचन्ते) ज्योतियों, प्रकाश जीवन ज्योति से (रोचना) ज्योर्तिमय बनाकर (दिवि) अन्तरिक्ष में स्थापित, अमर बनाने वाला।

युज्ज़न्तस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृण्णू नृवाहसा।।1.6.2।।

(युन्जन्तस्य) युजन्त अख्य जुड़कर (योगकर) जिससे ऐसे (काम्या) कामनाओं का, कामदेव (हरी) नष्ट करना (विपक्ष) विपरीत (सा) जीव ज्योति, पार्वती (रथे) शरीर (शोणा) रक्ताभ, ज्योर्तिमय, रश्मियाँ (धृण्णू) धारण करने, कराने वाला (नुवाहसा) श्रमहाति (वाहसा) वहन करने वाला, यज्ञों को धारण करने वाला परमेष्वर।

केतुं कृण्वन्नकेतेव पेशो मर्थ्या अपेशसे।
समुषद्भिरजाथाः ।। 1.6.3।।

(केतुम) – ध्वजा, उपाधि, पताका (कुण्वन:) करके (नष्ट) (अकेतवे) अकिंचन उपाधि अथवा ध्वजा से रहित (पेशो) भेद जगत का छदम ज्ञान (मर्या) सीमा, मर्यादा, सीमा रेखा (अपशेसे) भेद रहित, मूढ़। (सम) समान जैसा (उषदभि:) उषाकाल – या प्रभात का उगता सूर्य (अजायथ:) जन्मना, प्रगट होना, उदित होना

आदह स्वधामनु पुनर्मर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम्।। 1.6.4।।

(आ) आकर आना (दह) दहन होना, यज्ञ होना, जलना (स्व) आत्मा (धाम) धाम लोक, घर (नु) में (पुर्न) पुनः दुबारा, फिर से (गर्भत्वम्) गर्भ, यज्ञकुण्ड (एरिरे) ज्योर्तिमय, सूर्य, ईश्वर (दधाना) धारण कर, चरितार्थ करना (नाम) नाम, उपमा (यज्ञियम) यज्ञ का, उत्पत्ति के सम्बन्ध में।

बीलु चिदारूजत्नुभिर्गुहा चिदन्द्र वहिन्भिः।
अविन्द उखिया अनु।।1.6.5।।

(बीलु) दस बच्चो (इन्द्रियों को उत्पन्न करने वाली माता (चिदारूज) चित अरूज – चित को ज्योर्तिमय बनाने वाली (तनुर्भिः) शरीर रूपी (गुहा) कन्दरा, गुफा (चिदिन्द्र) चिन्त इन्द्र मन को उत्पन्न तथा गतिमान एवं प्रकाशित जीवन्त करने वाली (वहिन्भिः) ज्योतियाँ, यज्ञाग्नि, ब्रम्हज्वाला (अविन्द) मन्दमति, अज्ञानी (उस्त्रिया) सूर्य, आत्मा (अनु) अनुसरण करो।

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं विरः।
महामनूवत श्रुतम्।। 1.6.6।।

(देव) आत्मा ईश्वर (यन्तः) जैसा इस प्रकार (यथा) समान तथा (मतिम) मति, स्वभाव, मन (अच्छा) निर्मल, व्याप्त (विद्द) विद्धवता, सोच समझ (वसु) चेष्ठा, अग्नि, कर्म (गिरः) वाणी, सरस्वती (महामनु) महाकाल, अनन्त, परमेष्वर (इषत) इच्छा, कामना (श्रुतम) श्रुतियां, वेद।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा।। 1.6.7।।

इन्द्रेण – ब्रम्हज्वालाओं में। संहि – संयुक्त होकर अद्वैत करके द्वक्षसे – निचुड़ जाना, यज्ञ होना। संजग्मानो – यज्ञपतियों (आत्मा प्राणवायु) सहित यजमान। अबिभ्युषा – मोती, पुर्नउत्पत्ति, पुर्नजन्म। मून्द – आनन्द चमकना। स – ऐसे ही, सयुक्त होकर। मानव – मनुष्य। अर्चसा – अर्चनीय, वन्दनीय।

अनवद्यैरभिद्युर्भिखः सहस्वदर्चति।
गणैरिन्द्रस्य काम्यै।।1.6.8।।

(अन) – नहीं (वध) – मारना, हत्या (अनवद्यै) अमर, नित्य (अभि) सम्मुख। (द्यु) रश्मियाँ (अमिधु) रश्मियों का सम्मुख करने वाला (मखः) यज्ञ (सह) सयुक्त (स्व) आत्मा (अर्चति) अर्चन यज्ञ करना, अर्पित होना (गणै) मनुश्य लोग (इन्द्रस्य) ब्रम्हाग्नियाँ अमर, महान (काम्यै) कामनाओं को प्राप्त होना।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि।
समस्मिन्नृज्जते गिरः।।1.6.9।।

अतः – अतएव। परि – व्यापकता से, परिरूपेण। जमन – जीमना, ग्रहण करना। आगहि – आना, समर्पण। दिवो – देवत्व। वा – तथा। रोचनात् – रश्मियाँ ज्योतियाँ, तिलक। अधि – अत्यधिक, सम्मुख। सम – समान। अस्मिन – ऐसे हमको। निरन्जजते – ग्रहण करना, अपने में मिला लेना। गिरा – पार्वती, प्रलय के देवी, सरस्वती।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्रं महो वा रजसः।। 1.6.10।।

(इतः) गत, विस्मृत, भुलाकर (वा) तथा अथवा (साति) तीव्र, वेदना, पीड़ा (मथि) मृत्यु अन्त (अहे) अहो (दिवो) दिवः, दवत्य, ज्योति (वा) तथा, अथवा (पार्थिवात) जड़त्व पृथ्वी तत्व अज्ञान आदि (अधि) सम्मुख (इन्द्रम) ब्रम्हाग्नि, आत्मज्वाला (महो) महान (वा) तथा, अथवा (राजसः) बीज सहित संहार करना, निर्बीज करना प्रलय।

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहनिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत।। 1.7.1।।

(इन्द्रम्) ब्रम्हज्वाला (इद) इस प्रकार (गथिनो) गायें (बृहद) महान (इन्द्रम) ब्रम्ह ज्वाला (अर्केभिः) सूर्यो की भी (आर्किणः) सूर्य हे (इन्द्रम्) ब्रम्ह ज्वालाओं (अनु) अनुसरण (वाणी) वाणी से ज्ञान द्वारा (हषत्) इच्छा करना, ईष्वर में व्याप्त होकर (अद्वैत) जीने की इच्छा को।

इन्द्र इद्धर्थ्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ।। 1.7.2 ।।

इन्द्र – ब्रम्ह ज्वाला, आत्मा, ईश्वर, महान। इत् – इस प्रकार। अर्था – श्रेष्ठ। सचा – सयुंक्त होना, जुड़ना। सम्मिश्ल – सम्मिलित, व्याप्त। आ – आकर, आना। वचः – सूर्य। युजा – योग करना। इन्द्रो (इन्द्रः) आत्मा, महान। वज्री – अभेद, अमर, तड़ित पुज्जं हिरण्ययः – सुनहरी, लपटें, अमर रश्मियाँ।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूय्र्य रोहयद्दिवि।
वि गोभिरद्रिमरैयत् ।। 1.7.3 ।।

इन्द्रो (इन्द्रः) आत्मा, यज्ञ, ईश्वर, ब्रम्हाग्नि, महान। दीर्घायु – श्रेष्ठ, महान। चक्षस – दीक्षा गुरु, वृहस्पति। आ रोहयत् – आरोहण, उत्थान, ऊपर उठना। दिवि – आकाश, देवत्व, प्रकाश। वि – विशिष्ठ। गोभिः (गो अभिः)

ज्योतियों का सम्मुख। ऐरैयत – उद्दार, पुर्नजन्म। अद्रिम् – जल, पर्वताकार बादल, गीला पर्वत।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्त्रप्रधनेशु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः।। 1.7.4।।

(इन्द्र) महान, यज्ञ की ज्वाला, आत्मा, ईश्वर। (वाजेषु) यज्ञों में। नो (ना) हमको (अब) ग्रहण करें, यज्ञ करे साम्रगी बनावें। (सहस्त्र) हजार असंख्य (प्र) विशिष्ट (धनेषु) धन, ऐश्वर्य उपलब्धियाँ (च) तथा (उग्र) भयंकर (उग्राभि) महा भयंकर, प्रलय अति प्रचण्ड (उतिभि) ज्योतियों में रश्मियों में।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रोषु वज्रिणम्।। 1.7.5।।

इन्द्रम् – महान, आत्मा, अग्नि, ईश्वर। वयम् – हमारे। महाधन – संपूर्ण ऐवर्श्य, अमर धन। इन्द्रम् – महान। अर्भे – क्षीणता। हवाम् – यज्ञों द्वारा। अहे – अहो। युजं – जुड़ना। वृत्रोषु – अज्ञान, अन्धकार, काले घने घुमड़ते बादल।

वाज्रेणम्– इन्द्र का वज्र, तड़ित, ज्ञान की अमर ज्योति, आत्मा का प्रकाश।

स नो वृषन्नमु चरूं सत्रादावन्नवावृधि।
अस्मभ्यम प्रतिष्कुतः।। 1.7.6।।

(स) जीव, सचराचरए प्रकृति (नो) हम (वृषन्) उत्पत्ति, कर्ता यज्ञ (नमुम्) वन्दनीय, स्तुत्य, पूज्नीय (चरू) गतिमान, निरन्तर (सत्रादात्) सत्रो द्वारा, यज्ञो द्वारा (अन्न) अन्नादिक (अपा) जल (वृधि) वृद्धि करने वाले, बढ़ाने वाले, उत्पन्न करने वाले (अस्मभ्यम) उनकी (उपरोक्त यज्ञों की) भाँति ही हम सब को भी (अप्रतिश्कुतः) अपरिश्कृत अर्थात अहुति वत यज्ञों में ग्रहण करे मस्त करे।

जुज्जे तुज्जेय उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धो अस्य सुष्टुतिम्।। 1.1.7.7।।

तुंज्जे तुंज्जे – क्षण क्षण, पुनःपुनः बारम्बर निरन्तर। य– जो, उत्तरे उत्तरायण होना – ऊपर उठना। स्तोमा – यज्ञ। इन्द्रस्य – ब्रम्ह ज्वालों से। वज्रिणः – वज्र सा पुष्ट और अमर। न – नहीं। विन्धे – बीन्धना, नष्ट करना,

टुकड़े होना। अस्य – ऐसा। सुष्ठुतिम् – पुष्ठ, बलवान होना। बंसन्त पंचमी – बसन्त बसा। पंचमी – सरस्वती महोत्सव। सरस – रस से परिपूर्ण। वती –सदृश्य तदरूप, यथारूप। महोत्सव – महा उत्सवम् इति।

वृषा युथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः।। 1.7.8।।

(वृष) बैल (यूथेव) समूहो (वंसगः) वंश वृद्धि (कृष्टीरि) आकर्षण, सम्मोहन (अत्य) अत्यधिक (ओजसा) ओज सहित, ज्योर्तिमय। (ईशान) परमेश्वर, आकाश के स्वामी, सूर्य (अप्रतिष्कुतः) अप्रतिष्कृत करना, व्याप्त करना, प्रलय एवं उत्पत्ति प्रदान करना।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्र पच्च क्षितीनाम्।। 1.7.9।।

(य) जो (एक) एकत्त्व, एकी भाव, एक में ही (चर्षीणाम्) उत्पत्ति, धारण में सर्मथ, आहुतियों को धारण करने में सर्मथ – उत्पत्ति का मूल जीवनदायनी

(वसुनाम्) ब्रहम ज्वालाओं में (इरज्यति) अर्चन वन्दन, अर्पण के साथ, व्याप्त होना, अद्वैत करना (च) तथा (इन्द्र) महान, आत्मा को (पच्च) पाँच तत्वों से बनी काया शरीर और जीवन (क्षितीनाम्) अर्पित करना, देह की मृत्यु को वरण करना, देवयान् का प्राप्त होना।

इन्द्र वो विश्वतस्परि हवागहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ।।1.7.10।।

(इन्द्र) ब्रम्हाग्नि, आत्मा महान (वो) वा तथा अथवा ऐसे (विश्वतस्परि) वि. श्व. स्थ. परि – (वि) विगत (श्व) मृत्यु (स्थ) स्थायित्व (परि) व्यापक परिपूर्ण अर्थात सचराचर को स्थायित्व देने वाले तथा प्रकार से व्याप्त होकर परिपूर्ण करने वाले (हवामहे) हवाम्. अहे, यज्ञो द्वारा अहो (जनेभ्यः) संपूर्ण जीवों को (अस्माकम्) सबको हमको (अस्तु) स्वीकार करे, कहे ऐसा ही हो (केवलः) ब्रम्हाद्वैत, आत्मा में एक होकर सदा के लिए व्याप्त होना।

अष्टम् सूक्त आरम्भ

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम।
वशिष्ठमूतये भर।। 1.1.8.1।।

(एन्द) इन्द्र के पुत्र, इन्द्र (मन) की इन्द्रियों से संकलित होने के कारण जीव, बुद्धि अर्जुन (सानसि) ओतप्रोत, अमर ज्योतियों से परिपूर्ण, रोमरोम में व्याप्त, ब्रम्हाग्नियों, आत्मा, ज्योतियाँ (रयिम्) षीघ्र, क्षण क्षण निरन्तर (सजित्वानं) सदा जय को दिलाने वाले उपलब्धियों से परिपूर्ण, करने वाले नित्य जय (मोक्ष) प्रदान करने वाले। (सदासहम्) नित्स साथ करने वाले, जन्म जन्म साथ निभाने वाले (वर्शिष्ठम्) महानतम् (ऊतमे) रश्मियों, जीवनजयी, अमर, ज्योतियाँ (भर) व्याप्त होना, भर लेना।

नि येन मुष्टिहत्या नि वृत्रा रुणधामहै।
त्वोतासो न्यर्वता।। 1.1.8.2।।

(येन) जिसने, जिससे, जिनके द्वारा (मृष्टि) बंधन, भव. बंधन, मृत्यु (लक्षार्थ मुष्टिक) (नि) निहित, व्याप्त (हत्यया) मृत्यु, नष्ट होना, छिन्न भिन्न होना (या) तथा आदि (नि) निहित, व्याप्त (वृत्रा) अजान, अन्धकार (घुमड़ते घनेरे बादल) (रूणधाम) धूल घूसरित, नष्ट करना (अहे) अहो (त्वोतासो) लक्ष्यार्थ, त्वष्टा ऋषि को सताने वाला इन्द्र, दम्भ, अतृप्ति तथा मोहदि को संतव्त नष्ट करने वाला शरीर रूपी वस्त्र अथवा जीव की पहचान (न्यर्वता) नंगा करने वाला, नष्ट करने वाला तथा ज्योतियों के वस्त्रादि से अंलकृत करने वाला।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं धना ददीमहे।
जयेम सं युधि स्पृधः।। 1.1.8.3।।

(इन्द्र) आत्मा, महान, ईश्वर (त्वोतास) (त्वष्टा ऋषि को त्रास देने वाले) दम्भ एवं अज्ञान को नष्ट करने वाले ईश्वर, तप, सत्य (आ) आवाहन करें (वयं) हमारे हम सबके (वज्रग) वज्र, अभेद, अमर, ज्योर्तिमय, अन्धेरा का नाश करने वाले अस्त्र इन्द्र का अस्त्र वज्र (धना) भारी एवं अजेय (ददीमहे)

दीजिये प्रदान करें, हमको वज्र से सयुक्त करें। (जयेम) विजय में (स) साथ ही (युधि) युद्ध की जीवन रूपी संग्राम (स्प्रधा) सप्रधा में युद्ध में आमने सामने माया के संग्राम में हमारे साथ साथ रहे।

वयं शूरेभिरस्तृभि रिन्द्र त्वया भुजा वयम्।
सासहगम प्रतन्यतः।। 1.1.8.4।।

(इन्द्र) – महान, ईश्वर, आत्मा (त्वया) – आप (वयं) हमको (भुजा) – सयुक्त करना, जोड़ना (शूरेभि) शौर्य, शक्ति, साहस से (अस्त्रिाभि) – अस्त्र, शस्त्र, आयुधों से। (सासहयाम) (सास धर्नुधारी) दोनों हाथों हर ओर एक बाण चलाने वाला, अर्जुन की उपाधि (सत्यासांची) (प्रतन्यतः) प्रतन–सेना सहित आक्रमण स्वयं में ही संपूर्ण सेनाओं की शक्ति एवं सामर्थ्य से मुक्त होता संपूर्ण सेनाओं को अकेले ध्वस्त करनेवाला, सर्वशक्ति मान।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्राथना श्वः।। 1.1.8.5।।

(मह्रा) महान (इन्द्रः) ब्रम्हाग्नि ईश्वर, आत्म ज्वाला (परा) मोक्ष को करने वाली (च) तथा (नु) में (महित्वम्) महानतम सर्वश्रेष्ठ (अस्तु) होना (वज्रिणे) वज्र के समान अभेद, ज्योर्तिमय अमर (द्यौ) दया करे, कृपा करे (नः) हम सब (प्राथिना) प्रकाशित करना जीवन्त करना (च्छावः) मृतदेह, क्षण भंगुर शरीर। वाणी – ईर्षा, डाह, जलन की भरी, श्री हरि त्यक्ता, घूरे पे पड़ी। साध ा सुरत संवारों।।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः।। 1.1.8.6।।

(स) संयुक्त, सहित (मोहे) मोहासक्त, मोह संलिप्त (वा) तथा अथवा (य) जो जिसने (आशत) साधना (नरस्तोकस्य) (नर. ब्रह्मज्वाला. लोक) उत्पत्ति (सन्तति. स्य) ऐसे इस प्रकार। (सनितौ) सयुक्त करना, संतति प्रदान करना (वि) विगत रहित. प्रसन्न औलाद) (विप्रासो) उत्पत्ति के ज्ञान से रहित, जो शरीर का अंग भी बनाना नहीं जानते। (वा) तथा (धिया) धारण करना (यवः)

बीज, उत्पत्ति।

य कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुद।। 1.1.8.7।।

(यः) जिसने (कुक्षिः) गर्भ में (सोम) ज्योतियाँ, ब्रह्म ज्वालाये (पातम) गिरना, प्रकट करना, व्याप्त करना (समुद्र) सागर (इव) भाँति सद्धश्य जैसे (पिन्वते) सीचना (उर्वी) धरती उर्वरक भूमि (आपा) जल (न) नहीं (काकुद) कूबड़, फाफूँदी प्रकट होती नयी उत्पत्ति अथवा सृष्टी।

एवा हास्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्का शाखा न दाशेषु।। 1.1.8.8

(ऐवाहि) सू ऐसे ही, इसी प्रकार से पूर्व में भी (अस्य) ऐसे इस प्रकार (विरप्सी) नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाली प्रकृति पेड़ आदि (सुनृता) मंगल उत्पत्ति के यज्ञ (गोमती) गा ज्योति, ज्योतियों की ओर

यज्ञनियों में अर्पित होने (मही) मिट्टी चिता की राख। (पक्का) पके फल का अन्न (शाखा) शाखाओं पर पेड़ों की गलियों पर (ना) हमको (दाशुषे) यज्ञों के द्वारा।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे।। 1.1.8.9।।

(ऐवाहि) यू, ऐसे ही (ते) तथा (विभूतये) (वि) विशिष्ट (भूतये) उत्पत्ति करने में समर्थ, विभूतियों से परिपूर्ण (ऊतये) ज्योर्तिमय जीवन दायनी शक्तियाँ (इन्द्र) आत्माग्नि, ब्रह्मज्वाला, महान (मावते) मन, बन्धना, मिलना, अद्वैत कर स्वरूप को मिटाकर एक रस हो जाना (सद्य) नित्य, निरन्तर (चित) मन अन्तः करण (सन्ति) प्राप्त होना। (दाशुषे) यज्ञ के द्वारा।

एवा हास्य कामया स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये।। 1.1.8.10।।

(एवाहस्य) यू ऐसे ही (काम्या) जीवन एवं मोक्ष से संपूर्ण कामनाओं हेतु

(स्तोम) आत्मा यज्ञ, आत्म यश (उक्थं) वेद का ज्ञान, वेदों की वाणी, वेद का वचन (च) तथा (शंस्या) प्रशंसा विशेष स्थान प्रदान कर प्रतिष्ठित करना (इन्द्राय) आत्मा ज्वालाओं द्वारा (सोम) अमृत (पीतये) पान करते है। (प्र शसा – प्रशंसा)

नवम् सूक्त आरम्भ

इन्द्रेहि मत्स्थनधासो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महा अभिष्टिरोजसा।। 1.1.9.1।।

(इन्द्रेहि) हे आत्मा, हे यज्ञ! परमेश्वर। (मत्सय) मछली (अन्धसो) अन्धी। (मत्सयन्धसो) अन्धी मछली का खेल। (विश्व) संसार (अभिः) सम्मुख होना। (सोम) ज्योति, तप, साधना का प्रकाश (पर्व) उत्सव (अभि) सम्मुख होना (महा) महान (अभिष्टि) विशेष (ओजसः) ओज को प्रदान करने वाला, अमर करने वाला।

एमेनं सृजता. सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने।
चक्रिं विश्वानि चक्रये।।1.1.9.2।।

(एमेन) (अम) जीव प्राण, प्राणवायु (ऐनम्) विसर्जित हो गया, पतन को प्राप्त हुआ भटक गया। (सृजता) सृजन करने वाली, उत्पन्न करने वाली, माता (सुते) उत्पन्न करना, पुत्र रूप में (मन्दिम्) ज्योतियों में (इन्द्राय) ब्रम्हाग्नियों में, आत्म ज्वालाओं में (मन्दिने) ज्योतियों से पूर्ण करना, जीवन्त करना (चक्रि) आवागमन, व्रताकार (विश्वानि) क्षण भंगुर जगत (चक्रये) व्रताकार–नचाना, आवागमन के चक्र का निरन्तर घुमाना।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्चर्षणे।
सचैषु सवनेष्वा।। 1.1.9.3।।

(मत्स्वा) मत–मस्ती (स्व) आत्मा, आत्मा में मस्त है। आत्मस्य आनन्द से परिपूर्ण (सुशिप्त) अलौकिक, निर्मल (मन्दिभिः) ज्योतियों के सम्मुख रहने वाला, ज्योतियों का संग (अद्वैत) करने वाला (स्तोभि) यज्ञ के सम्मुख,

यज्ञमय् (विश्व) संसार जगत (चर्षणे) धारण करना जीवन्त करना (सच–स.युक्त) (सचैषु) आत्मा के ऐष्वर्य से संयुक्त (सवन) यज्ञ से पूर्व, स्नान (सवनेष्वा) आत्मा ज्योतियों रूपी जल से पवित्र स्नान।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासन।
अजोषा वृषभं पतिम् ।1.1.9.4।।

अ, सृ, ग्रम, इन्द्र, ते, गिरः, प्रति, त्वाम्, उदहासन, अजोषा, वृषभम्, पतिम् अ–रहित। सृ – उत्पत्ति। अस्र – नष्ट हुआ, उत्पत्ति से रहित हुआ। ग्रम – विष, जहर। ते – तुम्हारी गिरः – जिव्हा, जीभ, पर आया। प्रति – प्रति युन्तर, बदले में। त्वाम् – तुम, आप (महशिरा) (उदाहसत) मोद, मंगल आनन्द (अजोषा) अज, अमर, अमर कहानी। (व्रषभम्) बैल पर (पतिम्) बैठने वाले वृषभ, केतु, महाशिव।

सं चोदथ चित्रमवीग् राधा इन्द्र वरेण्यम्।
असदिन ते विभु प्रभु।। 1.1.9.5।।

(सं) संयुक्त होकर मिलकर, साथ–साथ (चोदथ) चमकना, प्रकाषित होना, जीवन्त होना, उत्पत्ति को प्राप्त होना।

(चित्रम) मूत्ति स्वरूप को प्रकट करना, रूप पाना (अर्वाच) क्षीण, मृत, पतन को प्राप्त, नीचे गिरे हुये (राध) गूधाना, चमकना, मिश्रित होना। अद्वैत करना (इन्द्र) महान, ब्रम्हाग्नि (वरेण्यम।) वरण करने हेतु। (असत) सत्य से रहित, जीवन से होना (इत्) इस प्रकार (विभु) वि–विशिष्ट भू – होना, जीवन्त बलिष्ठ शरीर को धारण करना (ते) तथा (प्रभु) (प्र – अमर भू होना) अमरत्व को पाना, आवागमन से उपराम, अवस्था, मोक्ष।

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः।
तुविद्युम्न यशस्वत।। 1.1.9.6।।

अस्मान्त्सु (अस्मद अन्तसु) हमे दिव्य पूर्णता हेतु आलौकिक सु अन्योष्टि हेतु। (तत्र) वहाँ। चोदयेन्द्र (चोदय इन्द्र) यज्ञ करे। चमत्कृत करो हे ब्रम्हाग्नि (राये) वेग पूर्वक, निरन्तर गति से, जोर से (रभस्वतः) रभस – यज्ञ

को आहुति, आत्म यज्ञ ने आहुतियो को लिये। (त) तथा (विद्युम्न) वि. द्युम्न। विशिष्ट ज्योतियों द्वारा (यशस्वतः) यश. स्ततः। आत्मा के यश (तररूपता) सद्धष्यता, संपूर्ण गुण धर्म को पाकर यशस्वी होना, आत्म यशस्वी।

सं गोमदिन्द्र वाजव दस्मे पृथु श्रवो बृहत।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ।।1.1.9.7।।

सं, गो, मद, इन्द्र, वाजव, दस्मे, प्रथु, श्रवो, बृहत, वि. श्व. आयु – विश्वायु, देहि (घोह). अक्षत. इदम् (अक्षितम्)।

सं – सयुक्त, साथ साथ। गो (ज्योति) मद् – (मस्ती) इन्द्र – (ब्रम्हाग्नि) महान। (वाजव) यज्ञों की आहुतियो को (दस्मे) भस्म करने वाली स्वयं में समा लेने वाली, आत्मसात करने वाली, ज्वाला (प्रथु) प्रभुत्वता, व्यापकता, प्रसिद्धि (श्रवो) उत्पत्ति, जीवन इत्यादि (बृहत) विस्तार अत्यधिक, बहुत अधिक पूर्ण (वि) विगत रहित (श्व) मृत्यु, शव (विष्वायु) अन्तहीन आयु, अनन्त अवस्था (धेहय) देहि धारण कराओ, प्रदान करो। अक्षयतम् – जो कभी क्षय

नहीं, अमर नित्य अवस्था।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद द्युम्नं सहस्त्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिशः।। 1.1.9.8।।

(अस्मे) हमको (धेहि) धारण कराओ (श्रवो) उत्पत्ति (बृहद) महान (धुम्न) ज्योतियाँ, कौधती बिजलियाँ (तड़ित) आकाशीय विद्युत (सहस्त्र) हजार असंख्य (सातमम्) सुख आनन्द तृप्ति (इन्द्र) महान, आत्मा (ता) (त्वाम) आप हे ईश्वर (रथिनी) रथियो के, शरीर रूपी रथ पर आरूढ़ जीव रूपी रथी, हम सब (इषः) ईश्वर परमेश्वर, आत्मा सारथि मुक्तिदाता, मोक्ष कर्त्ता।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये।। 1.1.9.9।।

वसः – बसना, घर। इन्द्रग् – महान, ईश्वर ब्रम्ह ज्वाला। (वसु. पतिम्) अग्नियों अधिपति। ब्रम्हज्वालाओं के अधिष्ठाता। गीर्भि – दीक्षा गुरु (वृहस्पति) गृणन्त – ग्रहण कराने वाले, प्रदान करने वाले। ऋग्मियम् – आत्म ज्ञान को

देने वाले, मोक्ष की राह दिखाने वाले। होम – यज्ञ होते है। गन्तारम् – अनन्त की ओर जाने। ऊतये – आत्म ज्योतियों, आत्मा की डोरियों से।

सुते सुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः।
इन्द्राय शूषमर्चति।।1.1.9.10।।

(सुते सुते) निचोड़ना, समाहित करना, उत्पन्न करना (न्योकसे) – नियोकस देव लोक में रहने वाले, क्षीर सागर में शयन करने वाले, भक्त हृदय में प्रतिष्ठित होने वाले (बृहद) महान, व्यापक (बृहत) प्रचुर, भीषण फैलाना (ऐदरिः) (एद अरि) सामग्री, समिघा, भोजन की शत्रु अर्थात् भस्म करने वाली ब्रम्हज्वाला। (इन्द्राय) ब्रम्हाग्नि से, आत्म ज्वालाओं से (अर्चति) अर्चना से (शूषम) मोक्ष, अनंत अवस्था में नया जन्म।

गायन्ति त्वा गायत्रिणो अर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्–वंशमिव येमिरे।।1.1.10.1।।

(गायन्ति) गाती है (त्वा) तुमको (गायत्रिणो) गायत्रियाँ, संपूर्ण (अर्चन्त्य)

अर्चना क्रते है पूजते है (अर्कम) सूर्यो के (अर्किण:) उत्पन्न करने वाले सूर्यो के सूर्य (देवलोक आदि) (ब्रहाणम) ब्रम्हा हे आप परब्रम्ह है। (त्वा) आप (शतक्रत) महाशिव, महादुर्गा, प्रलय के स्वामी (उद) ऊपर को उठना, देवत्य की और जाना। क्षीर सागर में अनन्त होना। (वंश) उत्पत्ति, बांस (इव) भाँति (येमिर) मोक्ष को देने वाले, उत्पत्ति पालन तथा उद्धार करने वाले।

यत् सानोः सानुमारूहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम।
तदिन्द्रो अर्थ चेतति यूथेन वृष्णिरेजति।। 1.1.10.2।।

(यत) जैसे, जिस प्रकार (सानो:) पर्वता कार अन्धेरे बादल आदि (सानुम) अंकुर, सूर्य आत्मभाव (आरोहयद) उभरना, ऊपर उठना, आरोहण करना, फहराना (भूर्य) उत्पत्ति, अन्तरिक्ष (स्पष्ट) स्पष्ट, प्रकाशित (कर्त्वम) कर्त्यव करने वाले (तद) ऐसे इस प्रकार (इन्द्रो) इन्द्रा:, महान, आत्मा, ईश्वर श्री कृष्ण (अर्थम) रहस्य, उत्तर, समाधान (चेनति) चैतन्य करना, प्रकट करना, जीवन्त करना (यूथेन) समूहो को सामूहिक रूप से व्यापकता सें (वृष्णि)

बाँसुरी, बरसना, उत्पत्ति, दम्भ, क्रोध, वासना, अज्ञान (ऐजति) कम्पायमान करना नष्ट करना।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यपा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।। 1.1.10.3।।

(युक्ष्वाहि) हृद्रय में अमर (नित्य) वास करने, घट घट वासी (केशिना) केशिना दैत्य, वासनाये, अतृप्तियाँ, भ्रम अन्धकार। (हरी) नष्ट करने वाले (वृषणा) बरसने वाले (कक्ष्यपा) मन हृद्रय की गहराईयों – मन अन्तः पुर में (अथा) अब तो (इन्द्र) महान (सोमपा) अमृत ज्योति का पान (विराम्) वाणी, बुद्धि, ज्ञान विवेक, सरस्वती (उप) व्यापत हो (श्रुति) वेदों में (चर) विचरण करने वाले श्रुतिं चरं) वेदो की ही संपूर्णता से जीने वाले।

. एहि स्तोमाँ अभि स्वरा ऽभि ग्रणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय।। 1.1.10.4।।

(एहि) यही (स्तोमाँ) स्तोत्र, सूक्त, यज्ञ, हवन (अभि) व्याप्त, सम्मुख, डूबा

हुआ। (स्वर) गाना, जीवन्त करना (ग्रणी) ग्रहण, अर्पण, अद्वैत (हया) आत्मा (आरूव) अरोहण, चढ़ना (ब्रम्ह) आत्मा, श्री कृष्ण (च) तथा (नो) हम (वसो) वसना, वास, घर (सच) जुड़ना, सयुक्त होना (एन्द्र) जीव (यज्ञम्) यज्ञ (वर्द्धय) वृद्धि, उत्थान, अमरता।

उक्थमिप्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरूनिष्षिद्यो।
शक्रो यथा सुतेषुणो शरणत् सख्येशु च।।1.1.10.5।।

(उक्थम्) स्तोत्र, वेद सूक्त (इन्द्राय) महान, आत्मा, ईश्वर (शस्य) अर्पित होना, प्रशंसा करना, स्तुति करना (वर्धनं) उत्पत्ति, वृद्धि, सुष्टि उत्थान (पुरु) अत्याधिक, असंख्य (निष्षिधे) निषेध करना, रोकना मिटाना (शक्रो) (शक्रः) अभेद, ज्योर्तिमय, नित्य, अमर (यथा) इस प्रकार जैसे (सुतेषणो) निचोड़ना, उत्पन्न होना, नरो जन्म (शरणत्) (शरणः) प्रलयकर युद्ध, महाप्रलय (संख्येषु) सखा भाव में नारायण (कृष्ण) रूप को (च) तथा।

तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।

स शक्र उत नः शक दिन्द्रो वसु दयमानः।। 1.1.10.6

(तमित्) (त्वम इत) तुम हो ऐसे (सखित्व) सदा साथ करो (इमहे) ईम अहे – अंतिम प्रतिष्ठा मात्र उपमा (अहे) अहो! तं (त्वम्) तुम (राये) गति, अनन्त गति, निर्बाध (तं) त्वम्, तुम (सुवीर्ये) शौर्य, मोक्ष प्रदान करने की सामर्थ्य (स) जीव (न) हम (शकदिन्द्रो) (शकत इन्द्राः) नित्य, उत्थान, महान – ब्रम्हाग्नियों में (वसु) अग्नि देवता कृष्ण। (दयमान) अतिशय, कृपालु, दयालु, दाता। शक्र – अमर, अभेद, ज्योर्तिमय, उत – उत्थान, ऊपर उठना।

सुविवृतं सुतिरच मिन्द्र त्वादातमिद्यशः।

गवामप व्रजं वृधिष्कृणुश्व राधो अद्रिवः।। 1.1.10.7।।

(सुविवृतं) सु, दिव्य आलोकिक (वि) विशिष्ट, विगत (वृतम) आगमन, जन्म, योनियाँ (सुनिरजम्) सु, दिव्य, (नि) निहित, व्याप्त (अजम्) अमर, अजन्मा (इन्द्र) महान (त्वादातम्) आप है दाता, दानी (इत्) ऐसे (यशः) यश,

सामर्थ्य, सम्मान (गवामय) गौ, ग्रह, नक्षत्र, गोकुल (वृज) कुल, समूह (वृदि ा) बढ़ानेवाले (कृणुष्व) आत्मा होकर करने वाले। (राधा) ज्योति, तड़ित, श्री राधा, अमित एकात्म प्रेम (अद्रिवः) गोवर्धन धारी (अदि) पर्वत (न) धारण, वहन करने वाला।

नहि त्वा रोदसी–उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि। 1.1.10.8।।

(नहि) नहीं, ओड़ना (त्वा) तुमको (रोदसी) धरती और स्वर्ग (उभे) मिलकर सारे (ऋघाय) सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, ब्रह्माण्ड (माणम्) अणुमात्र भी (इनवतः) भर पाते, सीमित कर पाते – व्यापकता को स्पष्ट कर पाते।

(जेषः) ऐसे सर्व शक्तिमान (परमेश्वर, आत्मा कृष्ण)। (स्वर्वतीरपः) स्वर, स्तुति भजन, स्वर्ग। वती(सम्मुख, समर्पित (अपः) दण्डवत, नत, सजल होकर (संगा) साथ, साथ गायें (अस्मभ्य) हम सब (धूनुहि) झूमझूमकर त्राहिमाम्।

.आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिश्व में गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृश्वा युजरिचदन्तरम्।।। 1.1.10.9।।

(आश्रुत्कर्ण) – निरन्तर आदि वेद गान को सुनने वाले (श्रुधी) वैदिक ादोक्ति (हवं) यज्ञों (नू) में (चित) मन, जीव (अधिष्ठ) अधिष्ठाता (मे) ऐश्वर्य दाता, प्रदान करने वाले (गिरः) ब्रम्ह विद्या, ब्रम्हज्ञान, सरस्वती (इन्द्र) आत्मा, महान श्री कृष्ण (स्तोम) यज्ञ (इमम) इस प्रकार (मम) मेरा (कृष्वा) करो आकर्षित करो। (युज) योग करो, जोड़ो (चित) जीव और ब्रम्ह (आत्माद्धित) दो का जुड़ना एक होना। (अन्तरम्) अर्न्तहद्रय में, अर्न्तमुखी होकर ।

विद्या हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह अतिं सहस्त्रसातमम्।1.1.10.10।।

(विद्या) ज्ञान, ज्योति, ऐवश्र्य दाता (त्वा) आप तुम (हि) निश्चयी, परिपूर्ण करने, पाने मात्र (वृषन्त) विष्णु, कृत्वा (मम्) में (वाजेषु) उत्पत्ति यज्ञों में (हवनश्रुतम्) मोक्ष में हे महान (अति) ज्योतियों की डोरियों, रश्मियाँ अमर

(सहस्त्र) असंख्य (सातमाम्) सुख, अनन्त सुख, नित्य स्वरूप।

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सूतिर कृधी सहस्त्रसामृ विम्।। 1.1.10.11।।

(आ) आओ (तू) तुम (न) हमारे (कौशिक) कुशिक के वंशज विश्वामित्र के पुत्र जेता मघुच्छंदसा (कौशिक) अमृत का पात्र, जिसमें यज्ञ का अमृत प्रकट होता है। (मन्दसानः) श्री कृष्ण, सूर्य जीवनदाता, ज्योर्तिमय अमर ज्ञान को देने वाले। (सुतम्) उत्पन्न निचोड़े हुये (पिब) पीना (नव्यमायु) नित्य, अमर, जीवत अनन्त आयु (प्र) विशिष्ट, दिव्य (सूतिर) उत्पन्न करना, प्रकट करना (कृधी) धारण करना, वरद करना (सहस्त्र) हजार असंख्य (साम) सुखो से (त्रृषिम्) साधक, सचराचर, ऋषि (इन्द्र) महान।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्ठयः।। 1.1.10.12।।

(परि) चारों ओर, व्यापक रूप से, व्याप्त (त्वा) तुममें (गिर्वणो) (गिर. वणः)

वाणी, शब्द – संसार, सरस्वती (गिर) ब्रम्ह विद्या, आत्मज्ञान, वेदवाणी (इमा) इस प्रकार (भवन्तु) प्राप्त होना नित्य (विश्वतः) सर्वत्र (वि – रहित। ष्व – मृन्यु) नित्य स्वरूप। सदा, सर्वदा, चहुं और (वृद्धायुमनु) श्रेष्ठदीर्घायु, काल (मनु) (वृद्धयो) श्रेष्ठतम्, महान, व्यापक होकर (जुष्टा) योग, मिलन जुड़ना (जुष्टयः) अद्वैत होना, तद्रूप, लय हो जाना।

इन्द्रं विश्वा अवीवृ धन्त समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्।।1.1.11.1।।

(इन्द्रम्) महान (विश्वा) सचराचर के अधिष्ठाता।(अवीव्रधन्त) सृष्टिकर्ता (अवी – रजस्वला, पुत्र उत्पत्ति की योग्यता को प्राप्त होना (व्रघन्त) निरन्तर, वृद्धि करने वाले विष्णु – वर्धमान। (समुद्रव्य) सागर से व्यापक रत्नों के भण्डार। (च) तथा (सम्) समान (गिरः) ब्रम्हज्ञान, सरस्वती (रथीतमं) अधि ष्ठाताओं के अधिपति (रथीनाम्) अधिपतिओं में (वाजानाम्) अधियज्ञों में। (सत्पतिम्) सृष्टि, उत्पात को धारण तथा प्रकट करने वाले अधिपतियों में

(पतिम्) अधिष्ठाता, परमेश्वर, नियन्ता सर्वस्व आप है।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारम पराजिताम।। 1.1.11.2।।

(सख्ये) सखा, मित्र, निरन्तर साथ देने वाले (त) त्वम् तुम (इन्द्र) महान (वाजिनो) आत्मयज्ञों के (मा) लक्ष्मी, ऐश्वर्य (भेम) ज्योर्तिमय (शक्स) मार्ग, गति, मृत्यु (शवसस्पते – मोक्ष के दाता, प्रलयकर शिव, जड़ को जीवन और गति प्रदान करने वाले विष्णु। (त्वाम्) तुम, तुम में (अभि) व्याप्त, सम्मुख (प्राणोनुमो) प्राण पल्लवित, वन्दनीय, नमन पूर्वक (जेतार) जेता मधुच्छनद्रस विजय मोक्ष की ओर जाने (अपराजितम्) जो कभी पराजित न हो (परा) ब्रहम, विद्या, ब्रम्हरन्ध्र, मोक्ष (जितम्) जीतने वाले, अर्थात् मोक्ष को पाने वाले वैदिक कालीन अर्थे में।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः।
यदि वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मद्यम्।।1.11.3।।

(पूर्वी) अनन्त काल से इस मार्ग से (इन्द्रस्य) आत्मा यज्ञ के लिए, महान सत्य के हित में (रातया:) अर्पित होना, यज्ञ होना, मिलना, गुथ जाना) (न) नहीं रहित (दस्यन्त्य:) दस इन्द्रियों के विषय एवं आसक्ति तथा भ्रम (वि) विशिष्टता से व्यापकता से (ऊतय:) आत्म ज्योतियों से, आत्मा की डोरियों से (यदि) बीजना रोपना (वाजस्य) आत्म यज्ञ, उत्पत्ति के लिए (गोमत:) ज्योतियों की, सुमति इन्द्रियों को आत्मसाथ करना (स्तोतृभ्य:) वेद की स्तुतियों, यज्ञ एवं आहुतियों द्वारा इनके लिए (मन्हते) मन को मारते हुये, एकाग्र एवं आत्मसाथ करते हुये (मद्यम्) मूढ़ भाव को पाना, आत्मानिष्ठ होना ज्ञानी से बढ़े वह मूढ़ जिन्होंने न व्यापे जगत गति अर्थाम मूढ़ हो जाओ और भगवान में समा जाओ।

पुराम्भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।।1.1.11.4।।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरूश्टुत:।।

पुराम्, भिन्दु, युवा, कवि, अमित, ओज:, अजायत (इन्द्रा:) (विश्व अस्य)

कर्मणाः, वज्री, (पुरूशस्थः) धर्ता (पुरम्) शरीर घर, लोक (भिन्दुः) छिन्न–भिन्न भेदन फोड़ना (युवा) युवक (कवि) आत्मा (अमित्) अमिट अत्याधिक असीम (ओज) ओज, तेज, प्रकाश, ज्योति (अजायत) प्रकट, उत्पन्न होना (इन्द्र) महान, व्यापक, ईश्वर, अग्नि (विश्वस्य) विश्व व्यापक, सृष्टी (धारण, सृजना संहार) (कर्मणाः) ऐसे कर्म को (धर्ता) धारण करने में समर्थ (वज्री) अमर ज्योर्तिमय, अभेद्रय (पुरूष्टुतः) पौरूष में स्थापित। पुष्ठता को प्राप्त।

त्वं बलस्य गोमतोऽपावरदिद्रवो विलंम्।
त्वां देवा अविम्युषस्तुज्यमानास आविषुः।।1.11.5

हे उत्पत्ति दाता! मोक्ष दाता! आप हैं मन को आत्मस्थ कर, यज्ञ ज्योतियों रूपी जल से पवित्र, ज्योतिर्मय एंव वज्र सा पुष्ठ कर, ऊपर उठाने वाले! (त्वां) आप (बलस्य) संकल्प शाक्ति को, जीवन रूपी संग्राम में जूझते योद्धा को, यज्ञ कर्त्ता को (गोमतः) ज्योतिर्मय दिशा और विचार प्रदान कर, ज्योति के (अपः) जल, समुद्र (अवः) संकल्प, शुद्धता (अद्रिवः) ज्योतिर्मय वज्र

की पुष्ठता एवं अमरता (बिलम) उच्चैश्रवस (इन्द्र के घोड़े का नाम तथा 'इन्द्र' मन को कहा गया है। उच्चैश्रवस मन की आत्मस्थ ऊर्ध्वगामो गति को भी कहते हैं!) (त्वा) आप हैं (देवा) देवता, ईश्वर (अबिम्युषे) उत्पत्तिदाता, सबमें व्याप्त, सृष्टि का मूल (तुज्यमानासे) उत्कृष्ट प्रतिष्ठा (आविषु) प्रदान करने वाले।

तवाहं शूर रातिभि प्रत्यायं सिन्धुमावनद्।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवे।1.11.6.

(आप हैं यज्ञों की पूर्ण कामना, उपमा है परमेश्वर की! समान विराजते दीक्षा बृहस्पति के, ज्ञान पाते आपसे यज्ञकर्त्ता होते समर्थ!)

(तवाहं) आप है (शूर) शूरवीरों, योगियों, यज्ञ अश्वों की (रातिभि) पूर्ण कामना (प्रत्याय) उपमा हैं (सिन्धुमावदन) महाविष्णु की (उपातिष्ठन्त) समीप विराजते हैं (गिर्वणो) देव गुरू बृहस्पति के (विदुष्टे) सचेत होते हैं, ज्ञान पाते (तस्य) उनसे (कारवाः) यज्ञ कर्त्ता, समर्थ!

मायाभिरिन्द्र. मायिन त्वं शुष्णमवातिरे।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिरं।।1.11.7.

(मायापतियों में महा विष्णु! प्रलयंकरों में महामृत्युन्जय, ज्ञानियों में परम्‌ब्रम्ह आप है! सम्पूर्ण संशय निर्मूल होते आपके द्वारा!

(मायामि) माया पतियों में (इन्द्र) महान (मायिनम्) प्रलंयकर महा मायापति विष्णु हैं (त्वं) आप (शुष्णमषतिरे) महा मृत्युन्जय हैं! (विदुष्ट) ज्ञान स्थित ज्ञानियों (तस्य) ऐसे (मेधिरो) मेधा से सयुक्त (तेषा) उन (श्रवांसि, उत्, तिर) संशय की विनाश करने वाले परंब्रम्ह हैं।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत।
सहस्त्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसी।।1.118

हे महान जगत नियन्ता! सम्मुख तुम्हारे जो करते अनुसरण! होकर अद्वैत, पाते ब्रम्हज्ञान, नित्य सहस्त्र सुख और सिद्धियाँ!

(इन्द्रम) महान (ईशानम्) जगत नियन्ता (ओजसा) ओज से संयुक्त (अभि)

सम्मुख़, अनुसरण, व्याप्त होना, प्रवेश करना (स्तोमा) यज्ञ, स्त्रोत, स्तुति गान (अनुषत) अनुसरण की कामना, गाना, पीछे जाना (सहस्त्रम्) असंख्य (यस्य) जिसके (रातये) आनन्द, सुख, उपलब्धियाँ, व्यापत होना, लीन होना (उत वा) अधिक, तथा, और, फिर–फिर (सन्ति) होती है (भूयासि) ब्रम्हज्ञान की प्राप्ति, उत्पत्ति–स्थिति आदि के रहस्य!

नत मस्तक झुके हुए में वे जेता मधुच्छन्दस और ऋषि, मनीषी जन सारे! ज्योति पुंज बनकर गगन में उठते जाते हैं ऋषि मधुच्छन्दा! जगमग ज्योतिर्मय स्वरूप! सहस्त्र सूर्ये की कांन्ति ।

ऋग्वेद प्रथम मण्डल के प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा के दर्श यज्ञ का समापन हुआ।

हरि – नारायण हरि!

हरि ऊँ.

संक्षिप्त संध्योपासनविधि

ब्रह्म मुहूर्त में जब चार घड़ी रात बाकी रहे, शयन से उठ कर भगवान् का स्मरण करे, फिर शौच–स्नान के अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र एकान्त स्थान में कुश अथवा कम्बल आदि के आसन पर पूर्व, ईशान अथवा उत्तर दिया की ओर मुँह करके बैठे (तीनो! काल की संध्या में उपर्युक्त दिशाओं की ओर ही मुँह करके बैठना चाहिये, केवल सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान और गायत्रीजप सूर्याभिमुख होकर करना आवशक है बायें हाथ में तीन कुश और दायें हाथ में दो कुशों की बनी हुयी पवित्री 'ऊँ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' इस मन्त्र से धारण करे। कुश के अभाव में सोने, चाँदी अथवा ताँबे की अंगूठी पहन कर भी कार्य किया जा सकता है। ओंकार और व्याहृतियों सहित गायत्री–मन्त्र का उच्चारण करके शिखा बाँध ले। यदि पहले से ही शिखा बँधी हो तो उसका स्पर्शमात्र कर ले। एक जोड़ा शुद्ध यज्ञोपवीत धारण किये रहना आवश्यक

है। दे ह पर धौतवस्त्र के अतिक्ति एक उत्तरीय वस्त्र (चादर या गमछा आदि) डाले रहना चाहिये। उत्तरीय वस्त्र के अभाव में एक और यज्ञोपवीत् (कुल मिलाकर तीन यज्ञोपवीत) धारण किये रहे;फिर किसी पात्र में शुद्ध जल रखकर उसे बायें हाथ में उठा ले और दायें हाथ के कुश से अपने शरीर पर जल सींचते हुये निम्नाकिंत मन्त्र पढे–

ऊँ अपवित्रो पवित्रो सा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
ये स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरे शुचि।।

फिर नीचे लिखे मन्त्र से आसन पर जल छिड़क कर दायें हाथ से उसका स्पर्श करे–

ऊँ पृथ्वित्वयाधृता लोका देवि त्वं विष्णुनााधृता।
त्वं च धारय मां दिवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

इसके बाद यथारुचि शास्त्रनुकूल भस्म–चन्दन आदि का तिलक करे। तत्पश्चात् 'ऊँ केशवाय नमे स्वाहा' 'ऊँ नारायणाय नमे स्वाहा' 'ऊँ माधवाय

नमे स्वाहा– इन तीन मन्त्रों को पढ़कर प्रत्येक से एक–एक. बार (कुल तीन बार) पवित्र जल से आचमन करे (आचमन के समय हाथ जानुओं के भीतर हो; पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा की ओर ही मुख हो। ब्राह्मण इतना जल पीये, जो हृदय तक पहुच सके, क्षत्रिय उतना ही जल ग्रहण करे जो कण्ठ तक पहुंच सके, वैश्य इतना जल ले जो तालू तक जा सके। उस समय ओठ बहुत न खोल, अंगुलियाँ परस्पर सटी रहें, अँगुष्ठ और कनिष्ठिका अलग रहे; खड़ा नहो, हँसता न रहे। जल में फेन या बुलबुले आदिन हों) । ब्राह्मतीर्थ से तीन बार आचमन करने के पश्चात् 'ऊँ गोविन्दाय नमे' यह मन्त्र पढ़कर हाथ धो ले। इसके बाद दो बार अंगूठे के मूल से ओठ को पोंछे, फिर हाथ धो ले। अंगूठे का मूल ब्राह्मतीर्थ है। तत्पश्चात् भीगी हुई अँगुलियों से मुख आदि का स्पर्श करे। मध्यमा–अँगुष्ठ से नेत्र, अनामिका से मुख, तर्जनी अँगुष्ठ से नासिका, मध्यमा–अँगुष्ठ से नेत्र, अनामिका–अँगुष्ठ से कान, कनिष्ठिका–अँगुष्ठ से नाभि, दाहिने हाथ से हृदय, सब अँगुलियों से सिर, पाँचों अँगुलियों से

दाहिनी बाँह और बायीं बाँह का स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर हाथ में जल लेकर निम्नांकित संकल्प बढ़कर वह जल भूमि पर गिरा दे–

हरि ऊँ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुश्यक्षेत्रो कलियुगे कलिप्रथमचरणे अकुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्ने अमुकशर्मा अहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थी प्राते (सायं अथवा मध्याह्न) संध्योपासनं करिष्ये।

इसके बाद निम्नाकिंत विनियोग पढ़े–

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तं दैवतपामुपस्पर्शने विनयोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक ही बार आचमन करे–

ऊँ ऋ़तञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजाय़त ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्चस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वे।।

तदनन्तर प्रणवपूर्वक गायत्री–मन्त्र पढ़कर रक्षा के लिए अपने चारों ओर जल छिड़के। फिर नीचे लिखे विनियोग को पढ़े–

ऊँकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्ति. त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पति वरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवतो तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायित्रो छन्दे सविता देवता, आपोज्योतिरिति शिरसे प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्य देवतो प्राणायामे विनियोगे।

इसके पश्चात् आंखे बंद करके नीचे लिखे मन्त्र से प्राणायाम करे। उसकी

विधि इस प्रकार है—पहले दहिने हाथ के अँगूठे. से नासिका का दायाँ छिद्र बंद करके बायें छिद्र से वायुको अंदर खींचे साथ ही नाभिदेश में नीलकमल दल के समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान विष्णु का ध्यान करते हुए प्राणायाम—मन्त्र का तीन बार पाठ कर जाय (यदि तीन बार मन्त्र पाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिक के लिए अभ्यास बढावे) – इसको पूरक कहते हैं। पूरक के पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों से नासिका के बायें छिद्र को भी बन्द करके तबतक श्वास को ओर रोके रहे जबतक कि प्राणायाम – मन्त्र का तीन बार (या शक्ति के अनुसार एक बार) पाठ न हो जाय। इस समय हृदय के बीच कमल के आसन पर विराजमान अरूणगौर– मिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रम्हाजी का ध्यान करे। यह कुम्भक—क्रिया है। इसके बाद अंगूठा हटाकर नासिका के दहिने छिद्र से वायु को धीरे धीरे तबतक बाहर निकाले, जबतक प्राणायाम मन्त्र का तीन (या एक) बार पाठ न हो जायं.इस समय शुद्धस्फटिक के समान श्वेत वर्णवाले त्रिनेत्रधारी

भगवान शंकर का ध्यान करे। यह रोचक क्रिया है। यह सब मिलकर एक प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम का मन्त्र यह है–

ऊँ भूः ऊँ भुवः ऊँ स्वः ऊँ महः ऊँ जनः ऊँ तपः ऊँ सत्यम् ऊँ तत्वावितुर्व रेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ऊँ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रम्ह भूर्भुव स्वरोम्।।

फिर नीचे लिखा विनियोग पढ़े–

सूर्यश्च मेति नारायण ऋषि प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतयों रात्रिाश्च देवता अपामुपस्पर्शाने विनियोगः।

तत्पश्चात् निम्नांकित मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे–

ऊँ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्त्या पापमकार्ष नसमा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुमपतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदहंम माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।

उपर्युक्त आचमन–मन्त्र प्रातः काल की संध्या का है। मध्यार्ळ ़और सायंकाल के केवल आचमन–मन्त्र प्रातःकाल से भिन्न है। मध्याह्नका का विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है–

आपे पुनन्त्विवति नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्द आपः पृथ्वी ब्रह्मणस्पर्तिर्ब्रह्म च देवता अपामुपर्स्शने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे–

ऊँ आपः पुनन्तु पृथ्वीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमोजयं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्व पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रह स्वाहा।।

सायंकाल के आचमन का विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है–

अग्निश्च मेति नारायण ऋषि प्रकृतिश्छन्दोऽग्नि मन्युमन्युपतयोऽहश्च देवता अपामुपस्यर्शने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे–

ऊँ अग्निश्च मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्ये पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्ष मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।।

फिर निम्नांकित विनियोग को पढ़े।

आपो हिष्ठेति व्यचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

इसके पश्चात् निम्नांकित तीन ऋचाओं के नौ चरणें में से सात चरणें को पढते हुए सिर पर जल सींचे, आठवें से पृथ्वी पर जल डाले और फिर नवें चरण को पढ़कर सिर पर ही जल सीचे। यह मार्जन तीन कुशों अथवा तीन अगुंलियों करना चाहिये।मार्जन मन्त्र ये है–

ऊँ आपो हिष्ठा मयोभुवेः। ऊँ ता न ऊर्जे दधातन। ऊँ महे रणाय चक्षसे। ऊँ यो वे शिवतमो रसे । ऊँ तस्य भाजयतेह ने। ऊँ उशतीरिव मातरः। ऊँ तस्मा अरं गमाम वः। ऊँ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ऊँ आपो जनयथा च नः।

तदन्तदर नीचे लिखे विनियोग को पढ़े–

द्रुपदादिवेत्यश्चिसरस्वतीन्द्रा ऋषयोऽनुष्टुप्छन्द आपो देवताः शिरस्से के विनियोगे।

फिर बायें हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक ले और नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे सिर पर छिड़क दे–

ऊँ द्रुदादिव मुमुचानः स्विन्न स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रोणैबाज्यमापः शुन्धान्तु मैनसः।

पुनः निम्नांकित विनियोग वाक्य को पढ़ें–

ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमघमर्षणे विनियोगः।

फिर दाहिने हाथ में जल लेकर नासिका में लगावे और (यदि सम्भव हो तो श्वास रोककर) नीचे लिखे मन्त्र को तीन बार या एक बार पढ़ते हुए मन–ही–मन यह भावना करे कि यह जल नासिकाके बायें छिद्र से भीतर घुसकर अन्तःकरण के पाप की दायें छिद्र सेनिकाल रहा है, फिर उस जल को ओर दृष्टि न डालकर अपनी बायीं ओर फेंक दे (अथवा वाम भाग में शिलाकी भावना करके उस पर उस पाप को पटककर नष्ट कर देने की भावना करे)

अघमर्षण मन्त्र इस प्रकार है–

ऊँ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततो समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्चस्य मिषतो वशी सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथ्वीचञन्तरिक्षमथो स्वः।।

इसके पश्चात् नीचे लिखे विनियोग--वाक्य का पाठ करे–

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगे।

फिर निम्नांकित मन्त्र को एक बार पढकर एक बार आचमन करे–

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वष्ट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्।।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग–वाक्य का पाठमात्र करें–

ऊँकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापति ऋर्षिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरित विश्वामित्र ऋषिर्गात्री छन्दे सविता देवतासूर्यार्घ्यदाने विनियोगः।

फिर सूर्य के सामने एक चरण की एँडी (पिछला भाग) उठाये हुए

अथवा एक पैर से खड़ा होकर या एक पैर के आधे भाग. से खड़ा हो ऊँकार और व्याहृतियों सहित गायत्री –मन्त्र को तीन बार पढ़कर पुष्प मिले हुए जल से सूर्य को तीन बार अर्घ्य दें प्रातेकाल और मध्याळ अर्घ्य जल में देना चाहियें यदि जल न हो तो स्थल को भलीभांति जल से धोकर उसी पर अर्घ्य का जल गिरावे। परन्तु सायंकाल का अर्घ्य कदापि जलमें न दे। खड़ा होकर अर्घ्य देने का नियम केवल प्राते और मध्याळ की संध्या में है, सायंकाल में तो बैठकर भूमि पर ही अर्घ्य–जल गिराना चाहिये। मध्याह्ना की संध्या में एक ही बार अर्घ्य देना चाहिये और प्राते एवं सायं संध्या में तीन–तीन बार। सूर्याध्र्य देने का मन्त्र (अर्थात् प्रणवव्याहृतिसहित गायत्री मन्त्र) इस प्रकार है–

ऊँ भूर्भव स्वे तत्सवितुवेरण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो ने प्रचोदयात् ऊँ।

इस मन्त्र को पढ़कर 'ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्ध्य दत्तं न मम'

ऐसा कहकर प्राते काल अर्घ्य समर्पण करे।

तदनन्तर नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर विनियोग करे–

उद्धयमिति प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यों देवता, उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्‌गायत्री छन्दः सूर्यो देवता, चित्रमिति कुन्साग्ङिरस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दे सूर्यो देवता, तच्चक्षुरिति दध्यड़ड़थर्वण ऋषिरेकाद्दि ाका ब्राम्ही त्रिष्टुप्छन्दः सूर्योपस्थाने विनियोगे।

तदन्तर प्रातकाल में खड़ा होकर सायंकाल में बैठे हुए ही अज्जलि बाँध कर तथा मध्यार्ल्ककाल में खड़ा हो दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर (यदि सम्भव हो तो) सूर्य की ओरदेखते हुए 'उद्वयम्' इत्यादि चार मन्त्रों को पढ़कर उन्हें प्रणाम करे। फिर अपने स्थान पर ही सूर्यदेव की एक बार प्रदक्षिणा करते हुंए उन्हें नमस्कार करके बैठ जाय।(मध्याह्न काल में गायत्री–मन्त्र, विभ्राट्–अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प और मण्डलब्राह्मण का भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये) ।

ऊँ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगनम्ऱ ज्योतिरुत्तमम्।

हम अन्धकार से ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोक को ताकि देवताओं में अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्यदेव को भलीभांति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त हों।

तेजोऽसीति धामनामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबृगुष्णिहौ छन्दसी सविता देवता गायत्र्यावाहने विनियोगे।

इस विनियोग को पढ़कर निम्नांकित मन्त्र से विनय पूर्वक गायत्री देवी का आवाहन करे—

ऊँ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।।

फिर लिखे विनियोग वाक्य को पढ़े—

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः।

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से गायत्री को प्रणाम करे–

ऊँ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीताय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्।।

इसके अनन्तर नीचे लिखे विनियोग को पढ़े–

ऊँकारस ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिऋृषिर्गायत्र्युष्णिग नुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्य देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रा ऋषिर्गात्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

फिर नीचे लिखे अनुसार गायत्री मन्त्रका कम से कम 108 बार माला आदि से गिनते हुए जप करें। अधिक जाहां तक हो अच्छा है। जप के समय गायत्री के तेजोमय स्वरूप का ध्यान और मन्त्र के अर्थ का अनुसंधान होता रहे तो

बहुत ही उत्तम है। गायत्री मन्त्र इस प्रकार है–

ऊँ भूर्भुवः स्वे तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ऊँ

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग वाक्य का पाठ करें–

विश्वतश्चक्षुरित भौवन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विश्कर्मा देवता सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्र से अपने स्थान पर खड़े होकर सूर्यदेव की एक बार प्रदक्षिणा करे–

ऊँ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।।

इसके पश्चात बैठकर निम्नांकित विनियोग का पाठ करें –

देवा गातुविद इति मनसस्पति ऋषिर्विराडनुष्टुप्छन्दोवातो देवता जपनिवेदने विनियोगः।

फिर

ऊँ देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञ ऊँ स्वाहा व्याते धाः।

इस मन्त्र को पढ़कर नमस्कार करने के अनन्तर–

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान्सूर्यनारायणः प्रीयतां न ममः।।

यह वाक्य पढ़े। इसके बाद–

उत्तमे शिखरे इति वामदेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः गायत्री देवता गायत्रीविसर्जने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़कर –

ऊँ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योऽयनुज्ञाता गच्छदेवि यथासुखम्।।

इस मन्त्र को पढकर गायत्री देवी का विसर्जन करे, फिर निम्नांकित वाक्य

पढ़कर संध्योपासनकर्म परमेश्वर.का समखपत करें–

अनेन संध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरे प्रीयतां न मम।।

ऊँ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु।

फिर भगवान् का स्मरण करें–

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।। श्रीविष्णवेन मः।। श्रीविष्णवे नमः।।